International Journal of Applied Research 2017; 3(11): 281-282

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(11): 281-282
www.allresearchjournal.com
Received: 14-09-2017
Accepted: 17-10-2017

Dr. Manju singh
Principal, Jagraut Women College, kherla bujurg affiliated to Rajasthan University Jaipur, Rajasthan, India

Correspondence
Dr. Manju singh
Principal, Jagraut Women College, kherla bujurg affiliated to Rajasthan University Jaipur, Rajasthan, India

श्रेणी संस्था की अर्थ व्यवस्था एवं विकास क्रम

Dr. Manju Singh

प्रस्तावना

समकालीन शिलालेखों, मुद्राओं और साहित्यिक साधनों से विदित होता है कि व्यापारियों और महाजनों के ही संघ नहीं थे अपितु विभिन्न प्रकार के उद्योग धन्धे करने वाले शिल्पियों और कारीगरों के भी व्यावसायिक संघ थे इन्हें श्रेणी, गण, पग, नैगम आदि कहा जाता था।

डॉ. मजूमदार ने लिखा है श्रेणी (गिल्ड) वह विशिष्ट शब्द है जो व्यापारियों या शिल्पियों के संगठन का परिचायक है इसकी परिभाषा इस प्रकार की जाती है–समाज या भिन्न जाति के परन्तु व्यापार और उद्योग अपनाने वाले लोगों का निगम। यह संगठन मध्यकालीन यूरोप के गिल्ड से साम्य रखता है।

सिन्धु घाटी की सभ्यता के युग में व्यापार उन्नत अवस्था में था यद्यपि यह कहना कठिन है कि उसका संचालन राज्य या किसी संगठित आर्थिक संस्था से होता था। मुद्राओं के बारे में भी निश्चित नहीं कहा जा सकता कि वे व्यक्ति विशेष की है या किसी संगठित आर्थिक संस्था की।

श्रेणी जैसी व्यापारिक संस्था का उदय पूर्व वैदिक युग में ही हो चुका था। रमेशचन्द्र मजूमदार और राधाकुमुद मुखर्जी का मत है कि वैदिक काल में आर्थिक क्षेत्र में संगठन की प्रवृत्ति विद्यमान थी और संगठित आर्थिक सस्थाओं का उदय हो गया था। ऋग्वेद में श्रेणी के लिए कहा गया है कि वह हंसों की तरह समूह में कार्य करती थी वस्तुतः श्रेणी संस्था का समस्त आर्थिक कार्य उसके समूह के माध्यम से होता था। ''पणि' जैसे व्यापारियों का भी उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है जो सुरक्षा को ध्यान में रखकर समूह में व्यापार के लिए जाते थे। यह प्रवृत्ति संगठन को व्यक्त करती है। श्रेष्ठि और गण जैसे शब्दों का भी उल्लेख वैदिक ग्रन्थों में हुआ है। श्रेष्ठि का प्रयोग श्रेणी के मुखिया के रूप में होता था। डॉ. मजूमदार का मत है कि परवर्ती साहित्य में 'श्रेष्ठिन' शब्द श्रेणि प्रधान के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

ऋग्वेद काल में श्रेणियों का उदय सम्भव नही लगता। 'पणियो' का समाज के आर्थिक क्षेत्र में प्रभाव था, किन्तु उनमें श्रेणियों के प्रमाण का अस्तित्व नहीं मिलता। गण और श्रेष्ठि का प्रयोग वैदिक साहित्य में आर्थिक अर्थ में नहीं हुआ है। इस कारण वैदिक काल में धन श्रेणियों के अस्तित्व के बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।[1]

उत्तर वैदिक युगीन भारत की आर्थिक व्यवस्था में यह संघटित प्रवृत्ति दिखाई पड़ने लगती है यह स्वाभाविक भी था कि विविध शिल्पों का अनुसरण करने वाले सर्वसाधारण जनता के व्यक्ति अपने संगठन बनाकर आर्थिक उत्पादन में तत्पर हो गये थें क्योंकि शिल्पियों के लिए पूर्णतया स्वच्छन्द रूप से कार्य कर सकना सम्भव नहीं था। संघटित होकर ही वे अपने कार्य को सूचारू रूप से सम्पादित कर सकते थे।[2]

उनके स्वागत के लिए 'श्रेणि–मुख्य' भी उपस्थित हुए। इस प्रसंग में श्रेणि मुख्यों के साथ नियमों का भी उल्लेख किया गया है, जो स्पष्ट रूप से शिल्पियों और व्यापारियों के संगठनों के सूचक हैं। शांन्तिपर्व में 'श्रेणि–मुख्यों' का प्रसंग में उल्लेख किया गया है राजा उनमें शत्रुओं द्वारा भेदनीति का प्रयोग न करने दे।[3]

इ.पू. छठवीं शताब्दी में उद्योग और व्यापारका एकाएक बड़ा उत्थान हआ। द्वितीय नगरीय क्रान्ति के फलस्वरूप लोगों को किसी संगठन की आवश्यकता अनुभव हुई। अतः श्रेणियों के नाम से संगठन स्थापित किये। इन शिल्पियों की श्रेणियों और व्यापारियों के नियमों के सम्बन्ध में अधिक परिचय हमें बौद्ध साहित्य द्वारा प्राप्त होता है। जातक कथाएँ इस सम्बन्ध में बहत उपयोगी है। निग्रोध जातक में एक भाण्डागरिक का वर्णन है जिसे सब 'श्रेणियों' के आदर के योग्य कहा गया है। उरग जातक में एक 'श्रेणिप्रमुख' और दो राजकीय अमात्यों के भुगदों का उल्लेख है।

बौद्धिककाल में विविध व्यवसाय वंशक्रमानुगत हो चुके थे। पिता की मृत्यु के बाद उसका पुत्र उसी के व्यवसाय को करता था। कुमारावस्था में ही लो अपने वंशक्रमानुगत व्यवसाय को सीखना प्रारम्भ कर देते थे। समय के बीतने के साथ–साथ पिता व अन्य गुरूजनों की देखरेख में व्यवसाय में अधिकाधिक प्रवीणता प्राप्त करते जाते थे। अपने व्यवसाय की बारीकियों से उनका अच्छा परिचय हो जाता था।

बौद्धकाल में किसी व्यवसाय का अनुसरण करने वाले लोग एक निश्चित क्षेत्र में बस कर अपने व्यवसाय का अनुसरण करने की प्रवृत्ति रखते थे। डॉ. मजूमदार का कथन है कि इस संदर्भ में उद्योग के स्थानीय करण की चर्चा महत्वपूर्ण है।

शिल्पियों की श्रेणियों को 'प्रमुख' या 'जैटठक' कहते थे। जातक कथाओं के कम्भार जेटठक, मालाकार जैटठक आदि शब्दों की सत्ता से यह बात भली भाँति सूचित हो जाती है। जैटठक के अधीन संगठित श्रेणियों में अधिक से अधिक कितने शिल्पी सम्मिलित हो सकते थे। इस सम्बन्ध में एक निर्देश समुद्ध वाणिज्य जातक से मिलता है जिसके अनुसार एक ग्राम में वर्धकियों के एक हजार परिवार निवास करते थे जिनमें से पाँच–पाँच सौ रिवारों का एक–एक जैटठक था। इस प्रकार एक गाँव में दो वर्धकि श्रेणियाँ थी जिनके दो पृथक्–पृथक् जैटठक थे। समाज में उन जैटठकों की प्रतिष्ठा बहुत अधिक थी। राजदरबार में बहुत सम्मानित था। वह बहुत समृद्ध तथा ऐश्वर्यशाली भी था।

इस तरह व्यवसाय की पैतृत्कता, उद्योग की विभिन्न शाखाओं को स्थानीयकरण और जैटठक का पद के आधार पर डॉ. पिक ने यह परिणाम निकाला है कि बौद्धकाल के व्यवसायी प्रायः उसी प्रकार से श्रेणियों में संगठित थे जैसे कि मध्यकालीन यूरोप के व्यवसायी 'गिण्डो' में संगठित थे।[4]

संदर्भ

1. गुप्तकाल का इतिहास
2. मध्यकालीन भारत का इतिहास
3. महाभारत शान्ति पर्व
4. वाक्नाटोकम्